धर्म का अर्थ और परिभाषा

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

मनुस्मृति के अनुसार राग-द्वेष से रहित वेदविद् विद्वानों द्वारा जिसका सेवन-पालन किया जाता है तथा हृदय में जिसका भलीभाँति अनुमोदन किया जाता है, वही धर्म है। मनुस्मृति में इसी का विवेचन किया गया है-

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।

हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत।।

इस कथन से यह सूचित होता है कि यह धर्म ही कल्याण का हेतु है एवं उसके ज्ञान से मन मुदित होता है। वेद के ज्ञाताओं ने यही जाना है कि वेद का ज्ञान ही कल्याण का हेतु है एवं वेद के अनुकूल धर्म ही मोक्ष का कारण है।धर्म ही कल्याणरूप है और अभ्युदय को कल्याण को कहते हैं। वेद के प्रमाण वाले नित्य धर्म को भलीभाँति अनुष्ठान करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है और इस लोक में महान् सुख, ऐश्वर्य होता है, अर्थात् इन कल्याणों का साधन धर्म है।

धर्म के मूल और आधार-

मनुस्मृति सम्पूर्ण वेद, वेद के जानने वालों की स्मृति और शील तथा साधुओं का आचार और अपनी प्रसन्नता धर्म का मूल है-

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।

धर्म के चार मूलस्रोतों या साक्षात् लक्षणों में सर्वप्रथम स्थान वेद का है। चारों वेद धर्मनिर्माण में परमप्रमाण हैं। इनको श्रुति भी कहा जाता है। वेद अपौरुषेय अर्थात् ईश्वर रचित हैं और इन्हीं के द्वारा संसार की वस्तुओं, धर्मों का प्रथम ज्ञान प्राप्त होता है। वेद सब सत्य विद्याओं के भण्डार हैं। क्योंकि चारों

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

वेद धर्म के प्रथम मूलस्त्रोत हैं, अतः इनका कुतर्क आदि का आश्रय लेकर खण्डन नहीं करना चाहिए। जो वेदों की अवमानना करता है, वह नास्तिक है। त्रयीविद्यारूप चारों वेदों-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद को अखिलवेद कहा गया है।

चारों वेदों के ज्ञाता विद्वानों द्वारा रचित स्मृतियाँ और उनका श्रेष्ठ गुणसम्पन्न स्वभाव, धर्म का दूसरा मूलस्त्रोत हैं। इन्हें धर्मशास्त्र भी कहते हैं। जिन विद्वानों ने पूर्ण ब्रह्मचर्य और धर्मपालनपूर्वक साङ्गोपाङ्ग वेदों का अध्ययन किया है, वही प्रामाणिक धर्मशास्त्र के प्रणेता हो सकते हैं तथा वही धर्म विषयक संशय में प्रमाण हैं, अन्य नहीं-

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद् भवेत्।

यं शिष्टा ब्राह्मणाः ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः।।

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।

ते शिष्टाः ब्राह्मणाः ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः।।

धर्म का तीसरा मूल स्त्रोत सदाचार है। वेदवेत्ता विद्वानों का श्रेष्ठ सत्याचरण ही सदाचार है। सदाचारी व्यक्तियों की समस्त शिक्षाएं ग्रहण करने के योग्य होती हैं। वेदों में अपारङ्गत विद्वानों का आचरण सदाचार नहीं कहा जा सकता है। मनुस्मृति में आचार की महत्ता का वर्णन प्राप्त होता है। श्रुति और स्मृति में कहा गया है कि आचार परम धर्म है-

आचारः परमो धर्मः।

आचार से भ्रष्ट हुआ ब्राह्मण वेद के फल का भागी नहीं होता जबकि आचार से युक्त पुरुष सम्पूर्ण फल को पाता है। आशय यह है कि सम्पूर्ण फल के दाता आचार को छोडना चाहिए-

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।

आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्।।

इस आचार को ध्यान में रखते हुए मनु ने धर्म के दश लक्षण का उल्लेख किया है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

अर्थात् धैर्य,क्षमा, मन को रोकना या वश में रखना, चोरी नहीं करना, पवित्र रहना, विषयों से इन्द्रियों को रोकना, शास्त्र के तत्त्व को जानने वाली बुद्धि, आत्मज्ञानवाली विद्या, सत्य एवं क्रोध न करना, ये दश धर्म के लक्षण हैं।

जो व्यक्ति धर्मानुकूल आचरण करते हैं, वे परमगति अर्थात् मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं।

धर्म का चौथा मूलस्त्रोत आत्मा की सन्तुष्टि और अपनी आत्मा का प्रिय कार्य है। इस स्त्रोत की स्पष्ट परिभाषा विचारणीय है। यहाँ प्रश्न उठता है कि सभी व्यक्तियों की आत्मा का प्रिय कार्य धर्म है अथवा एक स्तर विशेष की सीमा तक के व्यक्तियों की आत्मा का प्रिय कार्य? उत्तर में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हे किसी की आत्मा का प्रिय कार्य धर्म नहीं, अपितु वेदानुकूल आचरण करने वाले सद्गुणसम्पन्न, धार्मिक, पवित्रात्मा विद्वानों की उनकी आत्मा की सन्तुष्टि, प्रियता के अनुकूल जो कार्य हैं, वही धर्म है। वस्तुतः जो दुष्टसंस्कारी, राक्षससंस्कारी, तमोगुणी प्राणी हैं, बाल्यकाल से ही जो जीवहत्या, मांसभक्षण आदि कार्य करते आ रहे हैं, उनमें इन कार्यों के प्रति भय, शङ्का, लज्जा की अनुभूति दृष्टिगोचर नहीं होती। अतः उनकी आत्मा के प्रिय कार्य को धर्म नहीं माना जा सकता है। मनु ने धर्मकथन में अविद्वानों को प्रमाण नहीं माना, अपितु उनको मानने से हानि की आशङ्का प्रकट की है, केवल विशेष स्तर के विद्वानों को ही प्रमाण माना है। अतः अविद्वानों की आत्मा का प्रिय कार्य धर्म का लक्षण नहीं हो सकता।

मनुस्मृति का कथन है कि वेद और धर्मशास्त्र में वर्णन किए हुए धर्म का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य इस लोक में कीर्ति को प्राप्त करता है और परलोक में सबसे उत्तम सुख को प्राप्त करता है-

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।

इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।।

कहने का तात्पर्य है कि वेद और धर्मशास्त्र में वर्णन किए हुए धर्म का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य इस लोक में कीर्ति को प्राप्त होता है। वही पुरुष धार्मिक है और परलोक में धर्म के सर्वश्रेष्ठ फल को प्राप्त

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

करता है। वस्तुतः मनुष्य को प्रसिद्ध गुण वाले धर्म का सदैव अनुष्ठान करना चाहिए क्योंकि मनुष्य का जन्म इस लोक में धर्मानुष्ठान के निमित्त ही है।

वेद को श्रुति और धर्मशास्त्र को स्मृति जानना चाहिए। वे दोनों-श्रुति और स्मृति सब विषयों में विरुद्ध तर्क करने के अयोग्य है क्योंकि उन दोनों से ही धर्म प्रकाशित हुआ है-

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।

ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ।।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi